

मालव

विष सेमार पवनासन हारि ।  
पावक सम धनि मान तुषारे ॥  
नोरहिँ काजर वहि महि परह ।  
ससिँ बनि मसि सज्जन अनि वमइ ॥  
ए पहु कह दहुँ कत्रोन उपाइ ।  
अपश्य वेदन की करति साइ ॥  
विपुरासुर रिपु रिपु सर सहइ ।  
अवधि आसेँ केवल जिव बहइ ॥  
हृथय सिनेह दहन सन दहइ ।  
कहहि न पारिय जत दुख सहइ ॥  
सिद्धि नरसिंह भन मुनि सखि वानी ।  
सिनेह राख प्रभु पर दुख जानी ॥  
—भा० गी० सं०, पद संख्या—१९

[ अर्थ—कमल, सेमार ओ साप (आहि तुषार से) हारि गेल अछि, (ताहि) तुषार के ध्वजा (नायिका) अग्नि सहस्र (दाहक) बुझैत अछि। मोर (बहला) सँ (अस्त्रिक) काजर बहि कऽ (घोड़रि कऽ) पृथ्वी पर खसैत अछि, जेना (मुख रूपी) चन्द्रमा सँ दास कए (नयन रूपी) खज्जन मोलिक बमन कऽ रहल हो। हे प्रिय ! कहि दिअ (जे एकर) की उपाय ? (एहि विरह जग) अपूर्व वेदना सँ ओ (नायिका) की करत ? (ओ) कामदेवक वाण (क प्रहार) के सहि रहल अछि। केवल अवधिक भाषा ने जीवन (धार) प्रवाहित छैक (अर्थात् ओ केवल अर्थात् अवधिक निर्धारित अवधिक भाषा लगौने प्राण धारण केने अछि।) हृदयक (तरल) स्नेह अग्नि सहस्र प्रज्वलित भऽ रहल छैक। (ओ) कमेक दुख भोगि रहल अछि से कहि नहि सकैत छी। राखीक वचन केँ मुनि सिद्धि नरसिंह कहैत छथि—प्रभु (श्री कृष्ण) दोसरक दुख केँ जानि स्नेह रखैत छथि। ]

जाइत

रहए न धैरज हेरि मुख पङ्कज लोभी लोचन झुल्ले ।  
तुम कुचयुग जनि गडल परसमनि कनक धरावर झुल्ले ॥  
कामिनि मान न करहु सब ठामा ।  
लाप मदन सर जिव एहि अतसर आवे विधेक तुम रामा ॥  
आरति सञ्चर मनमथ कुञ्जर नेल मयन गुन पङ्क ॥  
हृदय निकारण तुम भति दासुन जुग भरि रहल कलङ्क ॥  
उचित न मानल मोर अकरम धल जत हम कर परकारे ।  
पिय बिनय रतने देह मान धन भन सिद्धिनरसिंह सारे ॥

—भा० गी० सं०, पद सख्या-२०



[ अर्थ—अहाँक मुखकमल के निहारि नयनरूपी लोलुप  
 भ्रमरकेँ धेरे नहि रहि जाइछ । अहाँक दुनु उरोज लगैछ  
 जेना सोनक पहाड़क शिखर पर स्पर्शमयिक रचता रह्य ।  
 हे कामिनी ! सब ठाम मान जुनि करू । कामदेवक असंख्य  
 बाण सँ (आहत हमर) प्राण एहू समय मे जोबि  
 रहल अछि । (तइओत) अहाँकेँ विवेक हो । आर्त्त भेल  
 संवरण करैत कामदेव छपी गज अहाँक मुण्णक पाँक मे निमग्न  
 भऽ गेल । (ओकर उदार कहाँ धरि करितिएक जे) अहाँक  
 हृदय अत्यन्त कठोर बनल अछि । एहि सँ युग-युगान्तर धरिक  
 लेल कलंक रहि जेत । हम जतेक चेष्टा कौल हमर कर्म  
 दोषे अहाँ तकरा उचित नहि मानल । प्रियतमक विनय  
 (रूपी) रत्नकेर (विनिमयमे) अपन मान छपी धन अपित करू ।  
 सिद्धि नरसिंह एहि सार वस्तु केँ कहैत छथि । ]

आसावरी

३

सजल नलिन दल सेजे ।  
 देह बह हुतबह तेजे ॥  
 तरब कजोन परकारे ।  
 बिह पयोनिधि पारे ॥  
 सोध सहस सखि पासे ।  
 जनि सुन बन भेल वासे ॥  
 सुमरि सुमरि तयु रङ्गे ।  
 अनुखन जनि हरि सङ्गे ॥  
 तइअओ हनय पैचवाने ।  
 बिनु हेतुँ हमर पराने ॥  
 उत्तरत सबे दुख भारे ।  
 भन सिद्धि नरसिंह सारे ॥

— भा० गी० सं०, पद संख्या—२१ ।

[ अर्थ—सजल कमल पत्रक लप्या ! ( मुदा ) देह ( जेना ) अग्निज्वाला सँ दहकैत अछि । विरह समुद्रक संतरण कोन प्रकारे करब ? महल मे सहस्रो सखी लग मे छथि तथापि ( एकटा प्रियतमक अभाव मे ) जेना शून्य बनगे बसैत होइ । हुनक केलि-क्रीड़ा केँ स्मरण कए लगैछ जेना हरि ( श्री कृष्ण ) निरन्तर संगे होथि । तथापि पञ्च-बाण अपन ( अपन पांचो बाण सँ ) अकारण हमर प्राण केँ बेधैत छथि । सिद्धि नरसिंह ( नायिका सँ ) सार ( वस्तु ) कहैत छथि जे समस्त दुखक भार उतरि जेत ( अर्थात् हरिक समागम भेने कोनो कष्ट नहि रहत । ]

विभास

४

पन्नग भुषण मलयपवन अघक होम उदासे ।  
नयन सेवल मानस केवल चाँदन चाँद हुलासे ॥  
साजनि पुरुष जञ्जित पापेँ ।  
पाषाण मानिक विधि अहमिक हुरल दए सतापे ।  
मान भवन जेसन कानन विषय विष समाने ।  
मदन परम निर्दम हृदय मरम मारल जाने ॥  
करहु सुजन सङ्गम जसतु जे मोर रह पराने ।  
सुमुखि सुकृति मिल पकट बेहो सिद्धि नरसिंह भाने ॥

—भा० शी० स०, पद संख्या २२



[ अर्थ पन्नगक भूषण बला ( अर्थात् सर्प के भूषण सहस्र धारण कैनिहार ) मलय पर्वत पर सँ चलल बसात सँ कष्टे होइछ । सेमार केवल सरोवरे मे सजल अछि, ( एतय त ) चानन ओ चन्द्रमा ( सेहो जेना ) आगि हो । हे साजनि ! पूर्वे संचित पापक कारखे, प्राप्त कैल ( प्रियतम स्त्री ) माणिक्य केँ अकस्मात् हरण कय विधाता संताप दऽ गेलाह । भवन जेना कानन रहय तेना मानल आ' विषय केँ विषवत् । कामदेव अत्यन्त कठोर हृदय छथि, मर्म पर बाणक आघात कैलन्हि । ( हे साजनि ! ) गुजन ( श्री कृष्ण ) क संग समागमक यत्न करह जाहि सँ हमर प्राण रहय । सिद्धि नरसिंह कहैत छथि । सुकर्म सँ सुमुखी प्रकट ओ व्यक्त भए भेटैत छथि । ]

५  
कत्रोने कलावति रे रे दड़ पुने ।  
बधिल हमर पुरुष पुने ॥  
निमिष आंतर जहि रे रे साजनि ।  
मोरें मने सहस्र जोजन जनि ॥  
हृदय धरब आवे रे रे कत्रोने परि ।  
कतहु न देखिय निठुर हरि ॥  
नयन गरण जल रे रे वथ हेरि ।  
गुन गन मुमरि सतओ बेरि ॥  
हनए मनोभव रे रे पुनु पुनु ।  
अनुखन विरह विकल तनु ॥  
घेरने बाओब रे रे हितजन ।  
तुअ गुने सिद्धि नरसिंह भन ॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—२३

[अर्थ—कोनो कलावती अपन हृदय वन्दन में हमर पूर्वक गुण केँ याद लिख ? हे योनि ! निमित्त भरिक अन्तर हमरा मनमें जेना सहस्र योजनवत् भइ जाइत छल । (सैह शाय जखन वस्तुतः दूर चल गेल छथि त) आव हम कोन तरहेँ धैर्य धारण करब, जखन कि तिष्ठुर हरि (श्री कृष्ण) केँ कतहु नहि देखैत छियेह । बाट तकैत, छाँखि सँ तोर बहि रहल छथि । सैकड़ो बेर गुण सभक मुगिरन करैत छी । कामदेव बेर-बेर बेचि रहल छथि । शरीर प्रतिक्षण विरह सँ विकल छथि । धैर्य रखने, अहाँ अपनहि गुण सँ, अपन हितैषी (श्री कृष्ण) केँ प्राप्त करब, सिद्ध नरसिंह (एहि विषय केँ) कहैत छथि ।]

बिनु भय मन धरि कयल सरन हरि  
आवे तुम दुभल उदासे ।  
जे आवे जिय सह अधिक पेपलि रह  
तनु सङ्गे करहु विलासे ॥

माधव कि कहव हमें तोह रामे ।  
जे जत अचल भल सवे विपरित भेल  
हमर करम परिनामे ।  
प्रथम जानल हमे परम मुगुध भने  
हम सन तुय नहि देहा ।  
दखन अमित्र बम हृदय कुलित माग  
भलें विशिं दुभल सिमंहा ॥  
परिमल विस लेखि मधुमालति देखि  
मधुकर की करत पाने ।  
दुसह वेदन तेज हरिपद जुग भज  
नृप सिद्धि नरसिंह भाने ॥

—भा० गो० सं०, पद संख्या-२४ ।



[अर्थ—मन में कोनो प्रकारक भय नहि राखि, हे हरि ! हम अहाँक शरणापन्न भेलहुँ । (मुदा) आब बुझल जे अहाँ हमरा प्रति विरक्त छी । जे आब प्राणहु सँ बड़ि (अहाँक) प्रेयसी अछि तकरहि सँ ग विलास करैत छी । हे नाथ ! हम (जे) रमणी (राधा), अहाँके की कहब ? जे जतेक नीक छल से सभटा हमर कम-दोष सँ प्रसिक्कल भऽ गेल । अत्यन्त विमूढ़ हम, पहिने बूझल जे हमरा सहश (प्रिय) अहाँके दोसर (नायिकाक) शरीर नहि अछि । मुदा आब नोक जेकाँ अहाँक स्नेह केँ बुझि लेल अछि, जे (अहाँक) वचन में त अमृतक उद्गार अछि मुदा हृदय बल सहश (कठोर) अछि । परिमल केँ विषवत् वृक्षि मधुमालती केँ देखि कऽ मधुकर की पान करैत ? सिद्धि नरसिंह (नायिका सँ) कहैत छथि, (एहि विरह जन्य) दुससह वेदना केँ त्यागि हरि (श्री कृष्ण) क पदद्वयक भजन करू ।]

भूगाल

अप्लाहुँ गेलाहुँ ई भेलि साति ।  
कुण्ड सङ्गे गमाउलि राति ॥  
भमर बूझ कमलनि कला ।  
कीट कैपचय कुसुम दला ॥  
न कच आकुल न कुचै रेह ।  
नहि पराभवेँ भामर देह ॥  
जीवन रूप कला सर्वे आगरि ।  
नाह गमार कि करति नागरि ।  
( श्रीसिद्धि नरसिंहमहादेवानाम् । )

—भा० गी० सं०, पद संख्या—२६ ।



[अथ आवागमन केल तकर ई दण्ड भेटल । गमार  
पहुक संगे राति बिताओल । अमार ने कमलिनोक सोन्दर्य  
के बुझेछ । कीड़ा त कुसुमक दल के कपचिते अछि । ने त  
केश बिखरल, ने नख-धते भेल छाने पराभव से शरीरे भाँवर  
भेल । थोवन, सोन्दर्य एवं कला, सबक धामरि नायिका !  
(मुदा जखन) ताँधे गमार हो तऽ सुरसिका की करति ?]

विशेष—एहि पद मे भणितक पंक्ति नहि अछि, मुदा  
पदक नीचा मे 'श्रीसिद्धिनरसिंहमहोदयानाम्' लिखि एकर  
स्पष्टतः निर्देश अछि जे ई पद 'सिद्धि नरसिंहमल्ल'क छन्हि ।

मालव

८

मास पखेँ उगए कलानिधि उगए अपन कए साज ।  
मुघ मुख सम नहि पावए तेँ खिन मने गुनि लाज ॥  
गिर रूप रमनि कहव कत कम्बु कएल जल भक्षि ।  
पवन चलित नव पङ्कज कुच-कोरक बरेँ काँप ॥  
सामर चामर निन्दए सुन्दर चिकुर कलाप ।  
भौह मनोहर कि कहव कामे तेजल निग्र चाप ॥  
मन घामोल बाओल नहि छासा न तेजए लोभ ।  
एसनि रमनि नृपसिंह कह हरिक निकट पए सोभ ॥

—भा० गो० सं०, पद संख्या—५० ।



[अर्थ—मास में, पक्ष में, चन्द्रमा अपन सम सजा (कला) क रांग (कामिनी क मुख क समता पयवाक प्रयास में) संगैत अछि किन्तु अहाँ क मुख क समता नहि पाबि (दोसर पक्ष में) लजा कए खिन्न-मन भऽ जाइछ। हे रमणी ! (अहाँ क) प्रोवाक रूप क (विषय में) कतेक कहब ? संख लज्जित भए जल में निमग्न भऽ गेल । (तहिना) पवन-चलित नव-कमल (अहाँ क) कुच-कलीक भय सँ काँपि रहल अछि । (अहाँ क) सुन्दर केश-राशि कारी चामरक निन्दा करैत अछि । (अहाँ क) मनोहर भईइक (विषय में) को कहब ? (बुझि पड़ेछ जे ओकरहि कारणें) नामदेव अपन अनुप के छोड़ि देलन्हि । मन (अहाँ क पाछाँ) दीडल, मुदा पकड़ि नहि सकल । तथापि (अहाँ केँ प्राप्त करवाक) लोभ जे अछि से आशा केँ नहि छोड़ि रहल अछि । नृपसिंह कहैत छथि जे एहि प्रकारक रमणी हरि (श्री कृष्ण) न लग में रहला सँ शोभायमान होइत छथि ।]

[विशेष—इ नद 'राग-रगिणी' में (पृष्ठ—७३-७४)]

निम्नलिखित पाठान्तर ओ पंक्ति-व्यत्ययक संग उपलब्ध होइछ—

मति पखें उगए कलानिधि लेए सकल नित्र साज ।  
तुअ मुख सम नहि देखिअ तँ खिन मनै गुनि लाज ॥  
कहयहुँ कत्रोन पुरुष धनि जाहि कर रह अतुराज ।  
जे अछ एहि महिगत जे घरजल एहेत भाग ॥  
सामर चामर निन्दए कोमल केस कलाप ।  
भौह मनोहर कि कहब नामें तेजल सर चाप ॥  
पवन चलित नव पल्लव कुच कोरक तरै काप ।  
बके धाग्रोल नहि पाग्रोल आशा लुब्धल लोभ ।  
ओहनि रमनि नृपसिंह कह हरिहि निकट पए सोभ ॥

मालव

जाहि देसै पिक पञ्चम नहि गावए कुसुमित नहि कानने ।  
 छव जलु मास भेद नहि जानए सहजहि अवल मधने ।  
 सखि हे सेहे देश गेला पिआ मोरा ।  
 रसमति वाली जतहि न जानए मुनिअ प्रेम बड़ थोरा ।  
 कहलिओ कहिनी जतए न वृक्षय इज्जित कि करत काजे ।  
 कजोने परि ततए रतल मोर बालम्भु गुनि भए निगुन समाजे ॥  
 की अपना केँ लघु कए मानव कि कहव तन्हिक बड़ाइ ।  
 की हमे गरुड गमारि गहज तह की रति बिरत कन्ह्याइ ॥  
 सिंह नृपति कह धैरज कए रह हरिक चरण कर सेवा ।  
 पड़ल अनाइति ते छथि अतए बालभु दोस न देवा ॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—१२१।

[ अर्थ—जाहि देश मे कोइली पंचम (स्वर मे) गान नहि करैछ, (जतय) कानन मे फूल नहि फुलाइछ, (जतय) छवो जलु ओ विभिन्न मासक भेद नहि जनेत छथि (अर्थात् साखी भरि एकाहि रंग बुझि पड़ैछ ) ओर (जतय) कामदेव स्वभावतः निर्बल छथि । हे सखी ! हमर प्रिय ताही देश कऽ गेला जतय केओ सरस वाणी नहि जनेछ । सुनैत छी, (जतय) प्रेम बड़ थोड़ छथि । जतय कहली बात केओ नहि बुझैछ (फेर) संकेत कोन काज करत ? हमर बल्लभ ओतय कोन प्रकारेँ आसक्त भऽ गेलाह छथि ? गुणी भऽ कऽ ओ निर्गुणक समाज मे (कोना छथि) ? की हम अपना केँ हीन कऽ कऽ बुझू अथवा एकरा हुनक बड़पन कहू ? की हम स्वभावतः बड़ गमारिज छी ? वा कृष्णो रति-विरत भऽ गेलाह छथि ? सिंह नृपति कहैत छथि—धैर्यक संग रहि हरिक चरणक सेवा कर । ओ पराधीन छथि तँ अन्यथ छथि एहि लेल बल्लभ केँ दोष नहि दिओन्ह । ]

चिन्तेप—प्रस्तुत पद निम्नलिखित पाठभेदक संग नेपाल पदावली (दृष्टव्य—राष्ट्रभाषा परिषद् पटना द्वारा प्रकाशित, विद्यापति पदावली, प्रथम भाग, पृष्ठ-३६२-३७०, पद संख्या-२६२) मे सेहो पाओल जाइत—



जाहि देस पिक सधुकर नहि गुजर कुसुमित नहि कानन ।  
 दुख कलु मास मेद नहि जाने सहजहि अद्वज भदने ॥ भू० ॥  
 सखि हे ते देस पिम गेल मोरा ।  
 रसमति बानी अतय न जायिअ सुनिअ पेम बड़ थोरा ।  
 फलितो कहिनी अतए न वृमए की करसि अमित काने ।  
 कजोन परि ततए रतज अछ बाजनु नि (र) भय निगुथ समाजे ।  
 हुने अपना के भिक कए मावज कि कहय तन्हि कि बदाइ ।  
 कि हमे गुरुबि गमारि (नि) सबतह कि रसि विरत कन्हाइ ॥

—भगइ विद्यापतीपावि ॥

—एहि पद मे अश्रितक पंक्ति अभाव अछि मुदा 'भगइ  
 विद्यापतीपावि'क संकेत द्वारा हे रूप होइछ जे ई विद्यापतिक  
 रचना अछि । एहि पदक आकर छोट 'नेपाल-पदावली' के अकृत्रिम  
 पद संग्रह मानि एहि मे प्राप्त विद्यापतिक पद के विशुद्ध मानन  
 जाइत अछि । मुदा प्रस्तुत पद के उपर्युक्त भाषा-गीत संग्रह  
 मे 'सिंह नृपतिक भविता से पद' छौं । भाषा-गीत-संग्रहक अति  
 छोट नेपाले धीक । ते एकरहु अकृत्रिमता पर अविवश नहि कैल  
 जा सकैछ । एहि स्थिति मे, एहि दुनु संग्रहक पद मे ककरा  
 प्राज्ञात्मिक मानन जाय ? विद्यापति ओ सिंह नृपति मे एकर वास्त-  
 विक रचयिता के दुधि ? सभ से विचारणीय विषय त ई जे नेपाल  
 पदावलीक अकृत्रिमता ओ विशुद्धता कतेक दूर धरि अक्षय रहैछ ?

हुइ तनु एक जिअ  
 ते विअ निहुर हिअ  
 एकहि नगर परदेसिया । ए मे माइ हे ।  
 के जान कनोने कह  
 ते रुसि रहल पहु  
 आत दिन समि न विहुँसिया । ए मे माइ हे ।  
 सून दसओ दिसा  
 कैसे कए छेरवि निहा  
 आज विरत मोर रसिया । ए मे माइ हे ।  
 सिंह नृपति कह  
 धैरज कए रह  
 हरि मने तोहहि पैसासिया । ए मे माइ हे ।

—भा० गी० सं०, पद संख्या - ११२

[ अर्थ—हूँ शरीर आ' एक प्राण । ( मुदा ) से प्रिय  
( आइ ) कठोर-हृदय भऽ गेल छथि । एकहि नगर मे  
परदेशी ( बनल ) छथि ।

के जनैत अछि ! के कहत ? जे एहि ( कारण ) सँ  
प्रियतम हामि रहला अछि । आत दिन जकाँ प्रसन्न नहि छथि ।

दशो दिशा शून्य अछि, कोना कऽ राति लेखि ? आइ  
हमर रसिक विरक्त छथि ।

सिंह नृपति कहैत छथि, धैर्य राखू, हरिक मन मे अही  
प्रेमसी धिकअनिह । ]

राजविवय

हे मधुषा

एँ बेरि जेवा देहे नीकें ।

पुनु पुनु आधोव बोधे ॥

रधि दुष हमर पमारि ।

दान तोह अघिकारे ॥

देप्रो मए मोतम हारे ।

तैप्रओ न घरह कँसहारि ॥

चहुँ मोर चिर परवासे ।

बिसरल मदन तरासे ॥

सिंह नृपति कह सारे ।

भज धनि नन्दकुमारि ॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—१२३।



[ अर्थ—हे पाषव ! एहि बेर नीक जेकां ( फिरि कऽ )  
जाय दिग । केर-केर ( दूध-दही ) बेचबाक लेल आएव ।  
दही दूधेक हमर व्यापार अछि आ' दान ( लेब ) अहाँक  
अधिकारे अछि । हम मोतीक हार देत छी, मुदा तस्यो अहाँ  
नाब ( सेबि कऽ पार करबाक लेल ) कह्यारि नहि धारण  
करैत छी । हमर प्रियतम चिर प्रवासी छथि, कामदेवक  
कष्ट केँ ( अर्थात् हमरा कामदेव कतेक कष्ट दैत छथि )  
बिसरि गेल छथि । 'सिंह नृपति' सार बरतु केँ कहैत छथि,  
हे धनि ! नन्दकुमार श्री कृष्णक भजन कर । ]

असावरी

बर लेहे कन्हारै करहु पार ।  
लह लाव मुदरिआ कोटिहार ॥  
जलद जाल दिग मग अँधार रे ।  
ग्राज ओर मोरा दधि पसार ॥  
बिषम जमुना नरि कुलैंगि घाट रे ।  
सौंभ परति बन मोँभ बाट ॥  
सिद्ध नृपति कह सुन सवानि रे ।  
सबे परिहरि भज सारँगवानि ॥

भा० गी० सं०, पद संख्या—१२४

[ अर्थ - हे कहेया । भनहि लाखो मुद्रिका ओ करोड़ी  
हार लिय (मुद्रा) हमरा (नदी) पार कऽ दिअ । सधन  
मेघ सँ दिशा ओ वाट अन्धकारमुक्त छथि । आइ हमर  
रहीक बेचब सेहो समाप्त भऽ गेल । भयंकर समुता नदी आ'  
तकर ई कुलम घाट । साँझ नहि जेत आ' वन दऽ कऽ वाट  
छेक । मिह नृपति कहैत छथि, हे सयान ! मुनू, सब के  
छोड़ि मारगवाणि ( ओ कुल ) क भजन कर । ]

नट

१३

कैसे कए बेसब एहि देश ।  
एहि ऋतु पिमा परवेश ॥  
सगुण करैते दिन गेल ।  
दिवस बरिस सम भेल ॥  
सपने घाएल जलि गेल ।  
दिठि भरि देखिअ न भेल ॥  
रषणि भेल मोरि काल ।  
सुमरि सुमरि हिय साल ॥  
कचि लाइ लवल सिनेहु ।  
जीवहि परल सदेह ॥  
नृपति सिंह एह भान ।  
विरहिनि वेदन जान ॥

—राग भजन संग्रह, पद संख्या—५१



[अर्थ—कोना कऽ एहि देश मे रहव? (जखन कि)  
 एहि धनु मे पिशा परदेश मे छथि। सगुण उचारैत  
 दिन धीतिगेल। (एक-एक) दिन, वर्ष सहस भऽ गेल।  
 मयना मे (ओ) अएलाह आ' चल गेलाह। भरि आँखि  
 देखियो ने भेल। राति हमरा लेल काल भऽ गेल। मन  
 पाड़ि-पाड़ि हृदय के पीड़ा होइत अछि,। ई नव स्नेह कोन  
 काजक १ (जाहि सँ) प्राणी सन्देह मे पड़ि गेल। नृपति  
 निह ई कहैत छथि, (ओ) विरहिणीक वेदना केँ बुझेत छथि।

